05 प्रधानाध्यापक और स्कूली शिक्षा व्यवस्था

रश्मि शर्मा

प्रधानाध्यापक अपने स्कूल का प्रधान तो होता ही है, साथ ही एक बृहद 'व्यवस्था' का हिस्सा भी होता है जिसमें एक संस्थागत ढाँचा होता है, कुछ प्रबन्धन प्रक्रियाएँ होती हैं, दी जाने वाली शिक्षा की प्रकृति को लेकर कुछ सिद्धान्त व कार्यप्रणालियाँ और निष्पक्षता सुनिश्चित करने के तरीके व खास नीतियाँ भी होती हैं। इस व्यवस्था के समग्र लक्ष्य, किसी सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक के लक्ष्य भी, भारत के संविधान, वैधानिक ढाँचे और सरकारी नीतियों में अन्तर्निहित होते हैं। लेकिन इन्हें उस सामाजिक सन्दर्भ की रोशनी में समझना जरूरी है जिसमें वह स्कूल स्थित है। इन लक्ष्यों को किस सीमा तक हासिल किया जा सकता है,यह 'व्यवस्था' के लक्षणों, यानी संस्थागत ढाँचे और उसकी सामर्थ्य, राजनीतिक व प्रशासनिक दृष्टिकोण, बच्चों और उनकी शिक्षा के बारे में मान्यताओं, प्रबन्धन व शिक्षण पद्धतियों आदि पर निर्भर करता है।

स्कूल के प्रधान के रूप में, प्रधानाध्यापक से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने साथियों, बच्चों के माता–पिता तथा विद्यार्थियों के सहयोग से स्कूल के लक्ष्यों को तय करेगा और उन्हें हासिल करने की कोशिश करेगा। लेकिन, किसी बृहद स्कूली व्यवस्था के अन्तर्गत एक प्रधानाध्यापक की हैसियत से उसके लक्ष्य व उन्हें हासिल करने की क्षमता उस बृहद व्यवस्था व उसके लक्षणों द्वारा तय होते हैं। यहाँ हम उस दबाव की पड़ताल करेंगे जो व्यवस्था द्वारा प्रधानाध्यापक पर आता है।

व्यवस्था तथा प्रधानाध्यापक के लक्ष्य

भारतीय संविधान छह से चौदह साल तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार का लक्ष्य सामने रखता है, और साथ ही समता को बढ़ावा देने की भी बात करता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आर.टी.ई.) और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 इस अधिकार की विस्तार से चर्चा करते हैं: न्यूनतम बुनियादी संख्या में शिक्षक व सुविधाएँ, शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए एक ढाँचा, समता को सुनिश्चित करने के लिए रणनीतियाँ आदि मुहैया कराना।

संविधान तथा वैधानिक व नीतिगत ढाँचों में अभिव्यक्त लक्ष्य अपना अर्थ हमारे विशिष्ट सामाजिक सन्दर्भ में ग्रहण करते हैं। जाति, लिंग तथा भू–स्वामित्व पर आधारित हमारे समाज की पारम्परिक विषमताएँ उच्च आर्थिक विकास के दौर में अधिक समकालीन विषमताओं के साथ जुड़कर और भी बढ़ जाती हैं। आर्थिक वृद्धि पुनर्वितरण के लिए एक बड़ा मौका हो सकता है क्योंकि पहले से मौजूद सम्पत्तियों की तुलना में वृद्धि के परिणामों का वितरण करना ज्यादा आसान होता है, साथ ही और भी ज्यादा लोग समृद्धि के फल बटोर सकते हैं। सभी के लिए शिक्षा के समान अवसरों का अभियान इस तरह के वितरण के लिए अहम भूमिका निभा सकता है।

लेकिन हालिया अध्ययन दर्शाते हैं कि भारत में स्कूली शिक्षा की दास्तान और भी अधिक विषमता को बढ़ावा देने की दास्तान है। सामाजिक–आर्थिक दर्जे के आधार पर स्कूलों के बीच बिलकुल स्पष्ट भिन्नता है। सम्पन्न घरों के बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं जबकि अपेक्षाकृत कमजोर आर्थिक स्थिति वाले बच्चे, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के बच्चे, काम करने वाले बच्चे ,लड़कियाँ आदि सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं। बिलकुल ही गरीब वंचित बच्चे नीति द्वारा निर्धारित आठ साल की न्यूनतम शिक्षा को भी पूरा नहीं कर पाते (नांबिसान 2005, रामचन्द्रन 2003)।

इस सन्दर्भ में, नीतिगत दृष्टिकोण से देखें तो दो सबसे महत्वपूर्ण चिन्ताएँ हैं: यह सुनिश्चित करना कि सभी बच्चे कम से कम आठ साल की शिक्षा पूरी करें और सरकारी स्कूलों में निष्पक्षता बनी रहे। यदि सभी बच्चे स्कूल जाएँ, और सरकारी स्कूल उच्च–स्तरीय शिक्षा प्रदान करें तो केवल कुछ थोड़े से नहीं, बल्कि सारे बच्चे अपनी सामर्थ्य व सम्भावनाओं के साथ न्याय कर पाएँगे। साथ ही बच्चों को सामाजिक–आर्थिक स्तर के आधार पर मिलने वाले शैक्षणिक अवसरों की मौजूदा विभेदकारी प्रवृत्ति को कमजोर किया जा सकेगा। संविधान, आर.टी.ई. और हमारी नीतियाँ सभी वर्गों को शामिल करने वाले तथा उच्च–स्तरीय सरकारी स्कूलों के सृजन को काफी स्पष्ट रूप से प्रोत्साहन देते हैं। इस अर्थ में, हमारे कानून और नीतियाँ प्रधानाध्यापक के लिए एक चुनौती खड़ी कर देते हैं, यानी अपने स्कूल को उत्कृष्टता की ओर ले जाना और सृजनशील व सार्थक नेतृत्व की सम्भावना पैदा करना।

सर्वांगीण सन्दर्भ में लक्ष्यों को प्राप्त करना

आइए, अब हम एक ज्यादा मुश्किल सवाल पूछते हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यवस्था किस हद तक प्रधानाध्यापक को समर्थ बनाती है व उसे मदद देती है?

> *स्कूल के प्रधान के रूप में, प्रधानाध्यापक से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने साथियों, बच्चों के माता–पिता तथा विद्यार्थियों के सहयोग से स्कूल के लक्ष्यों को तय करेगा और उन्हें हासिल करने की कोशिश करेगा। लेकिन, किसी बृहद स्कूली व्यवस्था के अन्तर्गत एक प्रधानाध्यापक की हैसियत से उसके लक्ष्य व उन्हें हासिल करने की क्षमता उस बृहद व्यवस्था व उसके लक्षणों द्वारा तय होते हैं।*

पदानुक्रम सम्बन्धी श्रेणीबद्ध व्यवस्था, केन्द्रीकरण की नीतियों और गैर–लचीले तरीकों के चलते प्रधानाध्यापक की नेतृत्व–भूमिका एक मजबूर व्यक्ति जैसी बन जाती है। स्कूली व्यवस्था बेहद पदानुक्रमित है। और स्कूल पदानुक्रम की इस व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर है (शर्मा 2009)। ऐसी व्यवस्था किसी सेना के लिए उपयुक्त हो सकती है, पर किसी शैक्षणिक संस्था के लिए इसकी तकरीबन कोई प्रासंगिकता नहीं है।

वे प्रमुख व्यक्ति, जो बृहद व्यवस्थाओं के हिस्से हैं, जैसे कि सरकारी स्कूलों के प्रधानाध्यापक, किसी विशेष 'सर्वांग', व्यवस्थापरक सन्दर्भ में अपना नेतृत्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व किसी निजी स्कूल के प्रधानाध्यापक द्वारा प्रदान किए जाने वाले नेतृत्व से भिन्न है।

निजी स्कूल के प्रधानाध्यापक को मूलतः पालकों, विद्यार्थियों तथा स्कूल बोर्ड या प्रबन्धन को सन्तुष्ट करना होता है। उसे भी कुछ सरकारी कायदों का पालन करना पड़ता है जैसे पाठ्यक्रम, परीक्षाएँ आदि,लेकिन उसके पास ठीक–ठाक स्वायत्तता होती है। दूसरी तरफ, सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक को एक बृहद तंत्र को सन्तुष्ट करना होता है और उसकी रिवायतों, नियमों और कायदों के अनुरूप कार्य करना होता है। इसमें उसका नेतृत्व आंशिक ही होता है। पर निजी स्कूल के प्रधानाध्यापक के बनिस्बत सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक को बृहद तंत्रों द्वारा विकसित किए जा सकने वाले संसाधनों का लाभ मिल सकता है, जैसे कि नियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम, साझे ज्ञान–संसाधन, साथियों से सीखना इत्यादि। स्वायत्तता के मामले में, सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक की स्थिति प्रतिकूल है, पर बौद्धिक व अन्य संसाधनों की सुलभता के मामले में उसकी स्थिति ज्यादा अनुकूल है।

लेकिन, मैं यह मानती हूँ कि वर्तमान व्यवस्था स्कूली प्रधानाध्यापक के पास मौजूद आंशिक नेतृत्व को और भी कमजोर कर देती है, जबकि बौद्धिक व अन्य संसाधनों की ज्यादा उपलब्धता इस क्षति की अपर्याप्त भरपाई ही कर पाती है।

पदानुक्रम सम्बन्धी श्रेणीबद्ध व्यवस्था, केन्द्रीकरण की नीतियों और गैर–लचीले तरीकों के चलते प्रधानाध्यापक की नेतृत्व–भूमिका एक मजबूर व्यक्ति जैसी बन जाती है। स्कूली व्यवस्था बेहद पदानुक्रमित है। और स्कूल पदानुक्रम की इस व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर है (शर्मा 2009)। ऐसी व्यवस्था किसी सेना के लिए उपयुक्त हो सकती है, पर किसी शैक्षणिक संस्था के लिए इसकी तकरीबन कोई प्रासंगिकता नहीं है। यह बेहद केन्द्रीकृत भी है। शिक्षकों को ऊँचे पदों पर बैठे अधिकारियों या मंत्रियों द्वारा स्कूलों में या उनसे बाहर पदस्थापित कर दिया जाता है। पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें पूर्व–निर्धारित होती हैं और शिक्षकों को प्रशिक्षित करते वक्त अक्सर स्कूल की जरूरतों व सहूलियत के बारे में ज्यादा कुछ सोचा–विचारा नहीं जाता। स्कूल को मुख्यतः 'आदेशों के प्राप्तकर्ता' के रूप में देखा जाता है, चाहे वे आदेश समय–सारणियों के बारे में हों, विशेष अवसरों के उत्सव की बात हो, सूचना एकत्रीकरण की बात हो या कुछ और। व्यवस्था में लचीलापन नहीं है, अतः नियमों को लागू करना ही पड़ता है चाहे वे प्रासंगिक हों या न हों। पदानुक्रम, कठोरता और केन्द्रीकरण इस हद तक व्याप्त हैं कि कई प्रधानाध्यापक तो जब उनके पास स्वायत्तता होती है, तब भी आदेशों के पालनकर्ता बने रहते हैं।

यह स्थिति प्रधानाध्यापक की सन्दर्भ–आधारित समाधान निकालने की कोशिश व क्षमता को सीमित कर देती है। चूँकि प्रधानाध्यापक ऊपर से नीचे तक आदेशों की शृंखला के आधार पर कार्य करते हैं, उनके पास विद्यार्थियों की विशेष जरूरतों पर ध्यान देने के लिए या कुछ नया करने के लिए कोई समय या गुंजाइश नहीं रह जाती। इसके चलते स्कूलों में उत्कृष्टता के लिए भी कोई जगह नहीं बचती। इसके अलावा, स्कूल एक अनजानी–सी संस्था बन जाता है, जहाँ दूर बैठे कुछ अधिकारियों के आदेशों का पालन किया जाता है। ऐसे परिदृश्य में, हो सकता है कि प्रधानाध्यापकों को लोगों का सहयोग न मिले और वास्तव में उन्हें काफी विरोध झेलना पड़े।

किसी बृहद व्यवस्था द्वारा प्रदान किए जा सकने वाले बौद्धिक तथा अन्य संसाधनों का लाभ हकीकत में प्रधानाध्यापक को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि भारतीय तंत्र ने अपनी संसाधन–संस्थाओं को पर्याप्त रूप से विकसित नहीं किया है। राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषदें (एस.सी.ई.आर.टी.) तथा जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थाएँ अभी भी ज्ञान की जीवन्त सृजनकर्ता और वितरक नहीं बन पाई हैं। शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता में बेहद अस्थिरता है। व्यवस्था के भीतर, शिक्षा व पढ़ाई की प्रकृति पर सार्थक संवाद बहुत कम होता है (दीवान 2009)। परिणामस्वरूप, प्रधानाध्यापक को ठोस शैक्षणिक सहयोग के रूप में व्यवस्था से तकरीबन कुछ नहीं मिलता। उसे भले ही ढेर सारे शैक्षणिक 'आदेशों' का पालन करना पड़ता हो, पर इनसे स्कूल के भीतर बेहतर अध्यापन और अध्ययन सुनिश्चित नहीं होता।

बौद्धिक जीवन्तता की कमी के साथ ही, प्रधानाध्यापक को संरक्षण व भ्रष्टाचार की संस्कृति से भी दो–चार होना पड़ता है। यह पूरे तंत्र में व्याप्त है और शिक्षा पर इसका बहुत गहरा असर पड़ता है। शिक्षकों

की पोस्टिंग एक महत्वपूर्ण तरीका है जिसके द्वारा यह पूरी व्यवस्था संविधान में वर्णित लक्ष्यों को पूरा करने की ओर जाने के बजाय फिर से शक्तिशाली लोगों के हितों की तरफ मुड़ जाती है (शर्मा 2009)। अधिकांश राज्यों में, शिक्षकों की पोस्टिंग संरक्षण–आधारित होती हैं। ऊँचे लोगों से बेहतर सम्बन्ध रखने वाले शिक्षक 'अच्छी' पोस्टिंग पा सकते हैं, यानी कि शहरी स्कूलों में, जबकि अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली लोग दूर–दराज के गाँवों में भेज दिए जाते हैं। इससे शिक्षकों के बीच पक्षपात की भावना घर कर जाती है और वे हतोत्साहित हो जाते हैं। अन्य अनैतिक आचरण, जैसे कि शिक्षकों के अनुपस्थित रहने की घटनाएँ, सामने आने लगती हैं। इसका कारण होता है शिक्षकों का अपने निरीक्षकों के साथ होने वाला 'गठजोड़' जिसके चलते वे शिक्षकों की अनुपस्थिति को नजरन्दाज कर देते हैं। कई बार चहेते शिक्षकों को ज्यादा सुविधाजनक और शहरी स्कूलों के साथ 'जोड़' दिया जाता है, जिससे कि दूर–दराज के ग्रामीण स्कूलों को शिक्षकों की कमी व उनकी अनुपस्थिति जैसी बातों का सामना करना पड़ता है। संरक्षण–आधारित कार्यशैली और भ्रष्टाचार के व्याप्त होने से ऐसा वातावरण बन जाता है जहाँ निजी हितों को संस्था के लक्ष्यों पर वरीयता दी जाती है, जिससे संस्थाओं की गरिमा और नैतिकता नष्ट हो जाती है।

आखिर में, यह व्यवस्था उन व्यक्तियों को कोई खास पुरस्कार नहीं देती जो इस तरह के वातावरण में काम करते रहने के बावजूद शैक्षणिक लक्ष्यों के प्रति कटिबद्ध बने रहते हैं। हमारे पास अच्छे शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों की पहचान करने का और उन्हें सम्मानित करने का कोई तरीका नहीं है। न केवल ऐसे व्यक्तियों को पदोन्नति और इसी तरह के अन्य औपचारिक अर्थों में कोई अलग मान्यता नहीं मिल पाती बल्कि कई बार ऐसे लोगों की ईमानदारी व उनके कार्य सामने ही नहीं आ पाते। अतः उत्कृष्टता हासिल करने की कोशिश एक एकाकी सफर बन जाती है जिसमें मान्यता व सराहना का कभी–कभार मिलने वाला वह पारितोषिक भी नहीं मिल पाता जिससे सब मनुष्य प्रेरणा हासिल करते हैं।

सार

यह पूरी चर्चा दर्शाती है कि यदि लोगों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील रहने वाले बौद्धिक रूप से जीवन्त किसी स्कूल के प्रधान के रूप में प्रधानाध्यापक का सहयोग किया जाना है तो व्यवस्था के भीतर महत्वपूर्ण बदलाव होना जरूरी है। हमारा संविधान, कानून व नीतियाँ उच्च–स्तरीय एवं विस्तृत दायरे वाले, समावेशी सरकारी स्कूलों की जरूरत की बात बहुत साफ तौर पर करते हैं। पर प्रधानाध्यापक को इसे हासिल करने के लिए समर्थ बनाने हेतु यह जरूरी है कि व्यवस्था पदानुक्रम–आधारित, 'आदेश देने वाली' भूमिका को छोड़कर एक अधिक सहयोगी भूमिका निभाए जहाँ कोई स्कूल अपने खास सन्दर्भ में अपने लक्ष्यों को परिभाषित कर सके, और प्रधानाध्यापक को कहीं ज्यादा स्वायत्तता मिल सके। लेकिन इसके साथ ही ऐसे समृद्ध शैक्षिक सहयोग और प्रबन्धन प्रक्रियाओं की स्थापना भी बहुत जरूरी होगी जो शिक्षकों व कर्मचारियों को प्रोत्साहित करें। यदि प्रधानाध्यापक अपने स्कूल की पूरी सामर्थ्य और सम्भावनाओं को हासिल करना चाहते हैं तो व्यवस्था के भीतर ही सुधार किया जाना बहुत जरूरी है।

References:

1. Nambissan (2005) Terms of Inclusion Dalits and the Right to Education in Ravi Kumar (ed.) The Challenge of Education in India. New Delhi. Sage Publications.
2. Ramachandran, Vimala (2003) Gender and Social Equity in Primary Education Hierarchies of Access. New Delhi: Sage Publications.
3. Sharma, Rashmi (2009) The Internal Dynamic in The Elementary Education System in India: Exploring Institutional Structures, Processes and Dynamics edited by Rashmi Sharma and Vimala Ramachandran. New Delhi. Routledge Press.
4. Dewan, Hriday Kant (2009) Teaching and Learning The Practices in The Elementary Education System in India: Exploring Institutional Structures, Processes and Dynamics edited by Rashmi Sharma and Vimala Ramachandran. New Delhi. Routledge Press.

रश्मि शर्मा मध्य प्रदेश काडर से भारतीय प्रशासनिक सेवा की अधिकारी हैं। सरकार व उसके सुधार उनकी सामान्य रुचि के क्षेत्र हैं, और स्कूली शिक्षा व विकेन्द्रीकरण (पंचायती राज) में उनकी खास दिलचस्पी है। उन्होंने दो किताबें, 'Local Government in India: Policy and Practice' (Coauthored with Vimala Ramachandran)' The Elementary Education System in India: A Study of Institutional Structures, Process and Dynamics' व कई लेख लिखे हैं। उनसे rashmisb2001@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।